शिक्षा के बाजारीकरण की अंबानी-बिड़ला रपट

प्रेम सिंह

शिक्षा के स्वरूप और उसकी व्यवस्था को नया आकार देने के लिए अंबानी-बिड़ला समिति की रपट को आए एक वर्ष हो चुका है। समिति की सिफारिशों का निचोड़ यह है कि शिक्षा को बाजार के हवाले कर दिया जाए।

"अगर अंबानी-बिड़ला की यह रपट स्वीकार कर कर ली जाती है तो भारत की भावी शिक्षा का रूप स्पष्ट हो जाता है। सन् 2015 में देश के श्रमिक वर्ग के बच्चे (लगभग 63 प्रतिशत) कक्षा आठ तक ही शिक्षित हो पाएंगे और इनके पास मात्र साक्षरता का कौशल होगा। ये गरीब बच्चे वैश्वीकरण द्वारा पैदा की गई सूचना प्रौद्योगिकी व अन्य तकनीकों का उपयोग करने वाले वैश्वीकृत श्रमिक बनेंगे। इन्हें बहुराष्ट्रीय कंपनियां खरीदकर एक देश से दूसरे देश ले जाकर अपने कारखानों में जोत सकेंगी। ठीक उसी प्रकार जैसे 18वीं और 19वीं शताब्दी में यूरोप और अमरीका ने अफ्रीकी और एशियाई मजदूरों को गुलाम बनाकर खरीदा था। लगभग 31 प्रतिशत जो मध्यम वर्ग के होंगे दसवीं या बारहवीं तक पढ़कर वैश्वीकृत बाजार में तकनीशियन बनेंगे और देश के मात्र 6 प्रतिशत बच्चे उच्च शिक्षा पाएंगे। वे ही नई प्रौद्योगिकी का सृजन करेंगे और वैश्वीकृत बाजार में इस इंसानी पूंजी की कीमत बढ़-चढ़कर लगाई जाएगी। अंततः वैश्वीकृत अर्थव्यवस्था पर विश्व-पूंजी की मालिक बहुराष्ट्रीय कंपनियों का वर्चस्व बरकरार रखने में यह शिक्षा-व्यवस्था मददगार

होगी। तो यह है अंबानी-बिड़ला द्वारा प्रस्तावित शिक्षा-व्यवस्था में छिपे वैश्वीकरण, नव ब्राह्मणवाद और नव मैकालेवाद का स्वरूप और यही है इसका लब्बोलुआब।'' (अनिल सद्गोपाल)

आगामी वर्षों में शिक्षा के स्वरूप और उसकी व्यवस्था के सवाल पर तैयार की गई अंबानी-बिड़ला समिति की रपट को आए एक वर्ष हो चुका है। समिति ने 'ए पॉलिसी फ्रेमवर्क फॉर रिफॉर्म्स इन एजुकेशन' शीर्षक से तैयार की गई अपनी रपट 20 अप्रैल 2000 को प्रधानमंत्री को सौंप दी थी। रपट में प्राथमिक स्तर से लेकर उच्च स्तर तक की शिक्षा के बारे में कई सिफारिशें की गई हैं। इनमें कुछ चालू किस्म की हैं जो हर रपट में मिल जाती हैं, कुछ विरोधाभासी और ज्यादातर देश की बहुसंख्यक आबादी की जरूरतों और समस्याओं के मद्देनजर नकारात्मक। सिफारिशों का हिंदी में अनूदित सार-संक्षेप यहां 'राष्ट्रीय सहारा' अखबार के शनिवारीय परिशिष्ट हस्तक्षेप की सहायता से साभार दिया जा रहा है:

- शैक्षिक कार्यक्रमों में प्राथमिक शिक्षा को सर्वोच्च प्राथमिकता मिलनी चाहिए और इसे सभी के लिए अनिवार्य और मुफ्त किया जाना चाहिए। प्राथमिक शिक्षा का लक्ष्य हासिल करने के बाद माध्यमिक शिक्षा को भी 15 वर्ष तक के सभी बच्चों के लिए आवश्यक बनाया जाना चाहिए।
- शिक्षकों के सतत् प्रशिक्षण एवं गुणवत्ता-विकास के लिए कानून बनाया जाना चाहिए।
- सूचना प्रौद्योगिकी तथा कंप्यूटर नेटवर्क से युक्त स्मार्ट स्कूलों की स्थापना की जानी चाहिए। इस कार्य को राष्ट्रीय मिशन मानकर अंजाम दिया जाना चाहिए और भारत के प्रत्येक जिले में एक स्मार्ट स्कूल की स्थापना की जानी चाहिए। इस मिशन को पूरा करने की दिशा में कर-लाभ देकर निजी क्षेत्र को भारी निवेश के लिए प्रोत्साहित किया जाना चाहिए।
- शिक्षकों की भूमिका को प्रोत्साहक एवं उत्प्रेरक के रूप में तब्दील किया जाना चाहिए तथा बच्चों को किताबों से पढ़ाने और लिखाई कराने के बदले अभ्यास एवं अनुभवों के जरिए शिक्षित करने पर जोर दिया जाना चाहिए। पढ़ाए जाने के बदले बच्चों को आज के सूचना युग में सूचना के बहुविध माध्यमों से सीखने देना चाहिए और शिक्षकों को इसमें मददगार की भूमिका निभानी चाहिए।
- माध्यमिक और उससे ऊपर के विद्यार्थियों को आवश्यक व्यावसायिक शिक्षा देने की व्यवस्था की जानी चाहिए।
- औपचारिक शिक्षा के विकल्प के रूप में दूरस्थ शिक्षा को महज प्रचार की सीमा से बाहर निकालकर तकनीक के जरिए बढ़ावा दिया जाना चाहिए और इसके लिए विदेशों से सीख लेनी चाहिए।

अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर यह स्वीकृत है कि बच्चों को अच्छा नागरिक बनाने के लिए शिक्षा में मूल्यों का समावेश होना चाहिए। मूल्यों की शिक्षा ही शिक्षा की सही परिभाषा है। दुर्भाग्य से भौतिक सुखों के पीछे भागने की प्रवृत्ति के चलते भारतीय समाज में युवा दिमाग मूल्यों की ओर से विमुख हो गया है। साथ ही सार्वजनिक जीवन में आदर्श व्यक्तियों का अभाव है और भारतीय समाज में चरित्र का संकट दरपेश है। लिहाजा, अच्छे और नागरिकता से युक्त समाज बनाने के लिए यह जरूरी है कि पूर्व-प्राथमिक शिक्षा में नैतिक शिक्षा पर जोर दिया जाना चाहिए और प्राथमिक, माध्यमिक तथा उच्च शिक्षा में भी इसे मजबूती से लागू किया जाना चाहिए। लेकिन इसके साथ यह सावधानी बरतनी होगी कि जाने या अनजाने विभिन्न वाद (छात्रों के दिमाग में) अपनी घुसपैठ न बना लें।

- स्कूल स्तर पर समान शिक्षा-पद्धति लागू की जानी चाहिए लेकिन उसमें क्षेत्रीय एवं स्थानीय स्तर पर खासकर भाषा, इतिहास एवं सांस्कृतिक विविधता की गुंजाइश रखी जानी चाहिए।
- शिक्षा के प्रबंधन को विकेंद्रित किया जाना चाहिए प्राथमिक और माध्यमिक शिक्षा तथा साक्षरता कार्यक्रमों में वित्तीय एवं प्रबंधन की जिम्मेदारी पंचायत और नगरपालिका स्तर पर होनी चाहिए।
- व्यावसायिक पाठ्यक्रमों में प्रवेश के लिए सैट, जी.आर.आई. एवं जीमैट की तर्ज पर राष्ट्रीय प्रवेश परीक्षाएं आयोजित की जानी चाहिए। साथ ही एक स्थान से दूसरे स्थान पर स्थानांतरण का आधार प्राप्तांकों को बनाया जाना चाहिए तथा इसके लिए माइग्रेशन सर्टिफिकेट (स्थानांतरण प्रमाण-पत्र) की आवश्यकता

को खत्म किया जाना चाहिए।

- ☆ भारतीय शिक्षा व्यवस्था बाजारोन्मुख नहीं है। लिहाजा, शिक्षा को बाजारोन्मुख बनाने सूचना प्रौद्योगिकी-केंद्रित बनाया जाना चाहिए। आज के भारत की यही जरूरत है। शिक्षण संस्थानों में पाठ्यक्रम एवं सुविधाओं को निरंतर नवीनतम बनाए रखना चाहिए।
- ☆ सरकारी स्कूलों में भवन, टेलीफोन एवं कंप्यूटर के लिए प्राथमिकता के आधार पर राशि मुहैया कराई जानी चाहिए। इसके साथ विश्वविद्यालयों को दी जाने वाली वित्तीय सहायता कम की जानी चाहिए तथा उन्हें आत्मनिर्भरता की ओर बढ़ाया जाना चाहिए। इन संस्थानों के पाठ्यक्रमों को भी समयानुकूल बनाया जाना चाहिए।
- ☆ सरकार की भूमिका को प्राथमिक शिक्षा के लिए राशि प्रदान कर अनिवार्य बनाने, शत-प्रतिशत साक्षरता लाने, गैर-बाजारोन्मुखी शिक्षा, जैसे उदार और परफॉर्मिंग कलाओं, की मदद करने, चुने गए उच्च शिक्षण संस्थानों की मदद करने व कोष प्रदान करने, छात्रों को कर्ज दिलाने में वित्तीय गारंटी देने, पाठ्यक्रम तथा उसकी गुणवत्ता में एकरूपता लाने तथा शैक्षिक विकास योजना बनाने तक सीमित किया जाना चाहिए। कोष मुहैया कराने वाली संस्था के रूप में यूजीसी की भूमिका समाप्त हो जानी चाहिए।
- ☆ कम सरकारी सहायता पाने या नहीं पाने वाले संस्थानों को संचालन तथा पाठ्यक्रम चयन में कल्पनाशीलता की स्वतंत्रता दी जानी चाहिए।
- ☆ विज्ञान, तकनीक, प्रबंधन तथा वित्तीय क्षेत्रों में पढ़ाई के लिए निजी विश्वविद्यालय खोलने के लिए निजी विश्वविद्यालय अधिनियम बनाया जाना चाहिए।
- ☆ वित्तीय उपक्रमों में स्तर-निर्धारण के लिए स्टैंडर्ड एंड पुअर्स या क्राइसिल जैसी संस्थाओं की तरह स्कूलों, कॉलेजों, विश्वविद्यालयों या संस्थानों के स्तर को निर्धारित करने के लिए स्वतंत्र एजेंसियों द्वारा समय-समय पर उनकी रेटिंग कराई जानी चाहिए और उनका स्तर तय किया जाना चाहिए।
- ☆ शिक्षा में प्रत्यक्ष विदेशी निवेश की अनुमति दी जानी चाहिए। शुरू में इसे विज्ञान एवं तकनीकी शिक्षा तक सीमित किया जाना चाहिए।
- ☆ प्राथमिक शिक्षा एवं साक्षरता के लिए शिक्षा विकास कोष की स्थापना कर उसमें दिए गए धन को आयकर से मुक्त किया जाना चाहिए।
- ☆ विदेशी छात्रों को आकर्षित करने के लिए भारतीय विश्वविद्यालयों तथा संस्थानों को प्रोत्साहित किया जाना चाहिए।
- ☆ विश्वविद्यालय राजनीति के अखाड़े बन गए हैं लिहाजा सभी राजनैतिक पार्टियों में यह सहमति बनाई जानी चाहिए कि वे शिक्षा संस्थानों से दूर रहेंगे। कानून बनाकर शिक्षा संस्थानों में राजनैतिक गतिविधियों पर पूरी पाबंदी लगा देनी चाहिए।
- ☆ ज्ञानी समाज की रचना अकेले शिक्षा के इनपुट से नहीं हो सकती। आर्थिक अवसरों का होना भी उतना ही महत्वपूर्ण है। शिक्षा जरूरी है लेकिन वही पर्याप्त नहीं है। शिक्षा और ज्ञान को दिशा देने के अवसरों का सृजन भी जरूरी है। नए अवसरों का पोषण करने के लिए अर्थव्यवस्था को नियंत्रण से मुक्त करने की जरूरत है। ये नए अवसर, बदले में नई तरह की शिक्षा को संभव बनाएंगे। नए अवसर प्रतिभाओं के देश से बाहर जाने की प्रक्रिया को भी उलट देंगे। इस अर्थ में, शैक्षिक और आर्थिक सुधार एक-दूसरे को मजबूत बनाएंगे।
- ☆ भारत में शोध बहुत हद तक एक अभिजात्यवादी अवधारणा है। आगामी वर्षों में अनुमानित औद्योगिक वृद्धि के मद्देनजर स्नातक स्तर से ही विज्ञान और प्रौद्योगिकी के क्षेत्रों में शोध को प्रोत्साहित किया जाना चाहिए।
- ☆ शारीरिक शिक्षा, खेल और सांस्कृतिक गतिविधियों को भी बढ़ावा दिया जाना चाहिए।
- ☆ कामगार तथा वंचित तबके के बच्चों को वैकल्पिक शिक्षा देने के लिए विविध कार्यक्रम चलाए जाने चाहिए। इन सिफारिशों को अगर एक सूत्र में पिरोया जाए तो कह सकते हैं कि समिति ने प्राथमिक शिक्षा के पूर्ण सरकारीकरण (जो कि कम से कम सरकारी स्कूलों में पहले से ही है) और उच्च शिक्षा के पूर्ण निजीकरण की पेशकश की है। यानी समिति की सर्वप्रमुख सिफारिश उच्च शिक्षा के निजीकरण की है ताकि शिक्षा के

क्षेत्र में बाजार का विकास हो सके। रपट में की गई इस सिफारिश से उत्साहित होकर सरकार ने उच्च शिक्षा के क्षेत्र में बढ़ते खर्च का राग और जोर से अलापना शुरू कर दिया है। जनवरी 2001 में हुई भारतीय विज्ञान कांग्रेस में प्रधानमंत्री ने अपने भाषण में उच्च शिक्षा पर बढ़ते खर्च पर गंभीर चिंता जताई। उनके भाषण का स्वर स्पष्ट था कि देश में उच्च शिक्षा का निजीकरण होना चाहिए। यानी रपट तैयार करने का आदेश देने से पहले ही दन चुकी थी। समिति ने कहने को 'सुधार' शब्द का प्रयोग किया है लेकिन उसकी सिफारिशें 'क्रांतिकारी' हैं। यह क्रांति बाजारी ताकतों के हक में की गई है। समिति की परेशानी का सबसे बड़ा कारण यह है कि "भारतीय शिक्षा-व्यवस्था बाजारोन्मुख नहीं है।" यानी यह बाजारोन्मुख शिक्षा को ही असली शिक्षा मानती है और इसे सीधे बाजार के हवाले कर देने की पुरजोर सिफारिश करती है। भारत में नहीं, दुनिया में शिक्षा का अभी तक जो अर्थ लिया जाता रहा है उसे यह समिति उलट देती है। कहना न होगा कि यह क्रांतिकारी कारनामा आने वाले समय में यथास्थिति—गरीब और कमजोर तबके अपनी गरीबी और कमजोरी में जीवन-यापन करें और अमीर और ताकतवर लोग अपनी अमीरी और ताकत को बढ़ाते जाएं—को बनाए और सम्भाले रखने की 'दूरदृष्टि' से की गई है।

समिति के सदस्य मुकेश अंबानी और कुमारमंगलम बिड़ला देश के जाने-माने पूंजीपति हैं। ये दोनों व्यापार एवं उद्योग पर गठित प्रधानमंत्री की सलाहकार परिषद के सदस्य हैं और उसी हैसियत से उन्हें शिक्षा पर रपट तैयार करने की जिम्मेदारी प्रधानमंत्री ने सौंपी थी। मतलब साफ है कि सरकार ने शिक्षा जैसे सामाजिक-सांस्कृतिक उपयोगिता के विषय को व्यापार एवं उद्योग का विषय मान लिया है। अन्यथा वह शिक्षा पर अलग से सलाहकार परिषद गठित करती और रपट तैयार करने की जिम्मेदारी शिक्षाविदों को देती। या कम से कम इन दो पूंजीपति महानुभावों के साथ समिति में कुछ शिक्षाविदों को भी जगह देती। रपट में की गई सिफारिशों और उन पर अब तक आई आलोचनाओं से यह स्पष्ट हो चुका है कि अंबानी और बिड़ला ने यह रपट विश्व बैंक और अंतर्राष्ट्रीय मुद्राकोष के आदेशों का अनुपालन करते हुए तैयार की है। अस्सी के दशक में राजीव गांधी सरकार ने जो 'नई शिक्षा नीति' तैयार की थी, उसके पीछे भी विश्व बैंक और अंतर्राष्ट्रीय मुद्राकोष के आदेश काम कर रहे थे। लेकिन उस सरकार ने इतनी गनीमत जरूर बरती कि देश के कुछ शिक्षाविदों को भी यह काम सौंपा। उसी का नतीजा यह रहा कि उसमें उच्च शिक्षा के निजीकरण का झंडा इस कदर बुलंद नहीं किया गया। मौजूदा रपट तैयार करने वाले दोनों पूंजीपतियों का शिक्षा के क्षेत्र में भी रुचि का कोई पूर्व रिकॉर्ड नहीं है। स्वतंत्र रूप से अध्ययन-मनन में उनकी रुचि का भी कोई साक्ष्य नहीं मिलता। उन्होंने अगर यह जिम्मेदारी ली तो केवल इसीलिए कि उन्हें शिक्षा के क्षेत्र में मुनाफे की सघन संभावनाएं नजर आ रही हैं। यहां यह उल्लेख करना जरूरी है कि अंबानी-बिड़ला की नजर से बाजारोन्मुख शिक्षा का अर्थ महज सूचना व संचार तकनीक का ज्ञान हासिल कराने वाली शिक्षा से है। इसमें ज्यादा से ज्यादा फैशन डिजाइनिंग, विज्ञापन और मॉडलिंग जैसे विषयों का और इजाफा किया जा सकता है। बाकी विज्ञान, समाजशास्त्र, मानविकी और कला जैसे विषयों को सरकार के जिम्मे और हाशिए पर रखा गया है, क्योंकि उनसे तुरंत धन कमाने के अवसर नहीं बनते। यह भी उल्लेखनीय है कि अंबानियों ने इस दिशा में व्यावहारिक पहल भी कर दी है। रिलायंस समूह गुजरात के गांधीनगर में 100 करोड़ रुपये का निवेश कर धीरूभाई अंबानी इंस्टीच्यूट ऑफ इनफॉरमेशन एंड कम्युनिकेशन टेक्नोलॉजी' नाम से एक निजी विश्वविद्यालय खोलने जा रहा है। इस निजी विश्वविद्यालय पर सरकारी मुहर लगवाने के लिए एक ड्राफ्ट बिल गुजरात सरकार के पास विचाराधीन है जिसे जल्दी ही विधानसभा की स्वीकृति मिल जाने की खबर है। इसके अलावा रिलायंस समूह 'धीरूभाई अंबानी फाउंडेशन' नाम से एक और निजी विश्वविद्यालय गुजरात के ही जामनगर शहर में खोलने की योजना पर काम कर रहा है। ये विश्वविद्यालय अमरीका के इस क्षेत्र के अग्रणी विश्वविद्यालयों के साथ सहयोग में संचालित होंगे। अंबानियों ने शिक्षा के क्षेत्र में मुनाफा कमाने की नीयत को बड़े ही व्यवस्थित ढंग से अंजाम दिया है। पहले उन्होंने व्यापार एवं उद्योग पर प्रधानमंत्री की सलाहकार परिषद में अपनी घुसपैठ बनाई। फिर शिक्षा में सुधारों

की सिफारिश करने वाली दो सदस्यीय समिति में एक सदस्य की जगह हथिया ली। फिर शिक्षा-सुधारों के नाम पर प्राथमिक और माध्यमिक शिक्षा को राज्य या सरकार के मत्थे डालकर उच्च शिक्षा यानी सूचना और संचार तकनीक की शिक्षा को प्रत्यक्ष विदेशी निवेश सहित निजी निवेश के लिए खोलने की सिफारिश कर डाली।

इस मुनाफाखोर वणिक बुद्धि ने यह पहचान लिया है कि "कार, फ्रिज, टीवी, और वाशिंग मशीन अथवा साबुन, टिटरजेंट,*टीवी कार्यक्रमों व चैनलों के जरिए मुनाफाखोरी को अक्षय बनाना संभव नहीं है। न ही सड़कों, पुलों, बिजली संयंत्रों आदि ढांचागत उद्योगों से ऐसा कर पाना संभव है। उत्पादन व ढांचागत दोनों ही प्रकार के उद्योगों की अपनी सीमाएं हैं। इन दोनों से ही एक सीमा से अधिक मुनाफा नहीं निचोड़ा जा सकता। अतः बाजारी ताकतों के लिए जरूरी है कि वे मानव जीवन की उन मौलिक आवश्यकताओं को मुनाफाखोरी का निशाना बनाएं जो शाश्वत है, जैसे कि खाद्यान्न, पानी, स्वास्थ्य और शिक्षा। मुनाफाखोरी की इस मुहिम का रास्ता अस्सी के दशक में अमरीकी राष्ट्रपति रीगन और ब्रतानवी मालिका थैचर ने प्रशस्त कर दिया था। अरबों डालर के खाद्यान्न बाजार पर चंद कंपनियों का एकाधिकार स्थापित हुआ। इसके बाद सामाजिक क्षेत्र के अंदर मुनाफाखोरी की सेंध लगाने में संयुक्त राष्ट्र संस्थान व विश्व बैंक आदि 200 अरब डालर के शिक्षा बाजार व 80 अरब डालर के पानी के बाजार में निजी पूंजी के निवेश के लिए रास्ता साफ करने की कारगुजारी में ओवरटाइम कर रहे हैं।" (अनिल चौधरी)

अंबानी-बिड़ला के साथ न्याय करते हुए यह कहना पड़ेगा कि रपट में की गई सिफारिशें उनकी अकेली चौयत का प्रतिफल नहीं है। जैसा कि ऊपर कहा गया है इसमें प्रधानमंत्री और उनके नेतृत्ववाली राजग सरकार की पूरी सहमति है जो सीधे विश्व बैंक और अंतर्राष्ट्रीय मुद्राकोष का हुक्म बजाने में लगी है। लेकिन साथ ही यह भी जान लेना जरूरी है कि अमरीका की सरपरस्ती में चलने वाली इन वित्तीय संस्थाओं का हुक्म वाजपेयी सरकार उनकी जोर-जबरदस्ती के चलते नहीं, अपनी विचारधारात्मक प्रतिबद्धता के चलते बजा रही है। उसे भारत के राजनैतिक-सामाजिक-सांस्कृतिक परिदृश्य से समता के विचार का बीजनाश कर देना है। यह लोकविश्वास कि भाजपा पूंजीपतियों की पार्टी है, यह भी मुनाफे पर गिद्ध-दृष्टि रखने वाले पूंजीपतियों की, इस रपट से सही सिद्ध होता है। याद करें कि वाजपेयी के नेतृत्व में दोबारा राजग सरकार बनने पर पूंजीपतियों ने यशवंत सिन्हा को ही फिर से वित्त मंत्री बनाने की गुहार की थी। उदारीकरण से पहले का राजनैतिक दौर होता तो किसी नेता के लिए यह शर्म से डूब मरने की बात होती। लेकिन यशवंत सिन्हा ने न केवल इसमें अपना गौरव माना, वाजपेयी ने भी गर्वोन्नत मुद्रा में पूंजीपतियों की इच्छा का तत्परता से पालन किया। रामबहादुर राय जैसे पत्रकार अक्सर यह दुख प्रकट करते पाए जाते हैं कि वाजपेयी के नेतृत्व में भाजपा अपनी विचारधारा से हट गई है। यह उनका भोलापन ही कहा जाएगा। सामंतवाद चाहे निजीकरण का हो या संप्रदायीकरण का, वाजपेयी बखूबी संघ परिवार की विचारधारा को परवान चढ़ा रहे हैं। यह एक अलग विषय है कि शिक्षा का बाजारीकरण उसके और समाज के संप्रदायीकरण की जमीन तैयार करता है, जिसका सीधा अनुभव सबके सामने है।

बहरहाल, वैश्विक अर्थव्यवस्था या भूमंडलीकरण का उद्देश्य मानव जीवन और समाज के सभी पक्षों व आयामों को बहुराष्ट्रीय कंपनियों की मुनाफाखोरी की गिरफ्त में लाना है। अंबानी-बिड़ला समिति की रपट उसी उद्देश्य की पूर्ति करती है। समाज के वंचित और कमजोर तबकों से मुनाफा नहीं खींचा जा सकता इसलिए उनकी कोई परवाह इस भूमंडलीकृत अर्थव्यवस्था में नहीं की जाती। उनकी शिक्षा की भी नहीं। उच्च शिक्षा की तो कतई नहीं। तभी रपट के मुताबिक 2015 में जाकर केवल 2.2 करोड़ यानी देश के सिर्फ 6 प्रतिशत बच्चे ही उच्च शिक्षा हासिल कर पाएंगे। रपट में उच्च शिक्षा का जो अर्थशास्त्र प्रस्तावित किया गया है उसके मुताबिक वैसी शिक्षा प्राप्त करने वाले छात्रों को सालाना करीब एक लाख रुपए फीस की मद में देने होंगे। किताब-कापी, उपकरण, कपड़ा-लत्ता, दैनंदिन खर्च और अगर छात्रावास में रहना पड़े तो उसका खर्च अलग से होगा। यह सारा खर्च अभिभावकों को ही उठाना होगा। पूंजीपति उनसे यह खर्च वसूलेंगे। कहने की जरूरत नहीं कि 6 प्रतिशत की संख्या में सरकारी स्कूलों में पढ़ने वाले गरीबों के बच्चों को तो छोड़िए, छुटभैए पब्लिक स्कूलों में पढ़ने

वाले मध्यवर्ग के बच्चे भी शामिल नहीं होंगे। इनमें शामिल होंगे केवल अत्यधिक महंगे पब्लिक स्कूलों में पढ़ने वाले अमीरों के बच्चे, अंग्रेजी और अंग्रेजियत जिनकी घुट्टी में होगी। रपट में इस उच्च शिक्षा के भाषिक माध्यम की कोई चर्चा नहीं है। वह सीधे अंग्रेजी ही मानकर चला गया है। अगर मध्यवर्ग के बच्चों को उच्च शिक्षा की दौड़ में शामिल रहना है तो समिति ने उनके लिए कर्ज लेकर उच्च शिक्षा हासिल करने की सिफारिश पेश की है। दरअसल इस सिफारिश का मकसद यही है कि प्रस्तावित उच्च शिक्षा का आर्थिक भार वहन कर पाने में असमर्थ किंतु कुशाग्र बुद्धि के छात्रों का लाभ भी बाजार और पूंजीपतियों को मिल सके। यानी समाज में जो भी कुशाग्र बुद्धि उपलब्ध है वह अनिवार्यतः बाजार की भेंट चढ़नी चाहिए। कर्ज लेकर पढ़ने वाले छात्रों से जहां एक तरफ ऋण-बाजार मजबूत होगा वहीं दूसरी तरफ छात्रों के जीवन में स्वतंत्र चुनाव की संभावनाएं एकबारगी और हमेशा के लिए समाप्त हो जाएंगी। जिस बाजार से वे ऋण उठाएंगे उसी की सेवा में उन्हें अपना जीवन समर्पित कर देना होगा। यह भी ध्यान देने की बात है कि बाजारोन्मुख उच्च शिक्षा में दक्षता हासिल करने वाले इन छात्र-नागरिकों के जीवन में सूचना तकनीक के बाहर के विषयों, मसलन प्राकृतिक विज्ञान, इतिहास, दर्शन, साहित्य, संस्कृति आदि की जानकारी की कोई जरूरत या अहमियत नहीं समझी गई है। आदिवासियों, दलितों, स्त्रियों, पिछड़ों, अल्पसंख्यकों और अगड़ी जातियों के गरीबों के जीवन से जुड़ी समस्याओं से वे बेखबर होंगे। वे बाजार के भीतर बाजार के लिए ही जिएंगे और मरेंगे। अलगाव की जो पीड़ा समाज के कमजोर समूह झेलते हैं वह तो और तीव्र होगी ही, उच्च शिक्षा प्राप्त नागरिकों का जीवन भी अलगावग्रस्त होगा। इसके सामाजिक-सांस्कृतिक दुष्परिणामों की चिंता अगर की जाए तो काफी भयावह स्थिति बनती है। कुल मिलाकर यही है उच्च शिक्षा के निजीकरण की सच्चाई।

समिति की रपट की कुछ सिफारिशों पर अलग से गौर करना मुनासिब होगा। रपट में प्राथमिक शिक्षा को मुफ्त और अनिवार्य बनाने पर भाषणबाजी की हद तक जोर दिया गया है। संवैधानिक प्रतिबद्धता, कि उसके अनुच्छेद 45 में 14 साल की आयु तक अनिवार्य शिक्षा का प्रावधान है, और सर्वोच्च न्यायालय के ऐतिहासिक निर्णय, कि शिक्षा एक बुनियादी हक है, का हवाला देते हुए लिखा गया है कि ''हमारी शिक्षा के एजेंडे में अनिवार्य और मुफ्त प्राथमिक शिक्षा को शीर्षस्थ स्थान दिया जाना चाहिए।'' अनिवार्य और मुफ्त प्राथमिक शिक्षा पर आने वाले भारी खर्च की जिम्मेदारी सरकार से उठाने को कहा गया है, यह उपदेश देते हुए कि वैसा खर्च भारत के भविष्य के लिए निवेश होगा। खर्च की पूर्ति के लिए घाटे वाले सार्वजनिक उद्योगों के विनिवेशीकरण और लोगों से कर-मुक्त दान प्राप्त करने की सलाह दी गई है। यानी भारत के भविष्य के लिए निवेश सरकार देश की मेहनतकश जनता की कमाई से खड़ी की गई सार्वजनिक संपत्तियों को बेचकर करे और भारत के वर्तमान में निवेश व्यापारी घराने निजी संपत्ति खड़ी करने के लिए करें। यही है नई (मुक्त) अर्थव्यवस्था और रपट में प्रस्तावित नई शिक्षा व्यवस्था के एक-दूसरे को मजबूत बनाने का सच। जाहिर है, जब कल्याणकारी राज्य की सरकार ने पचास वर्षों में संवैधानिक प्रतिबद्धता और सर्वोच्च न्यायालय के ऐतिहासिक निर्णय का पालन नहीं किया तो जन-कल्याण के सभी कामों से पिंड छुड़ाने में लगे आज के स्वयंसेवी राज्य की सरकार भला क्यों करेगी। रपट में चलते तौर पर यह तो कहा गया है कि ''स्कूल स्तर पर समान शिक्षा-पद्धति लागू की जाए।'' लेकिन रपट में प्रतिष्ठित और दूरदराज देहातों तक में कुकुरमुत्तों की तरह फैल रहे पब्लिक स्कूलों पर कोई टिप्पणी नहीं है। प्राथमिक शिक्षा के पक्ष में सारी भाषणबाजी के बावजूद समिति को स्कूली शिक्षा में चल रहा सरकारी और पब्लिक स्कूलों का विभेद स्वीकार्य है। उसकी चिंता है तो बस यही कि आबादी का ज्यादा से ज्यादा हिस्सा अर्थव्यवस्था के वैश्वीकरण से जुड़कर उसे स्थायी बनाने में मददगार हो। यहां फिर अनिल सद्गोपाल के शब्द देखे जा सकते हैं: ''भारतीय संविधान को लागू हुए पचास वर्ष हो गए और देश के आधे बच्चे (दो-तिहाई लड़कियां) स्कूली शिक्षा से वंचित हैं। लेकिन कभी भी राजसत्ता और पूंजीपति वर्ग ने इन बच्चों के पक्ष में देश की प्राथमिकता बदलने और अनुच्छेद 45 को लागू करने की वकालत नहीं की। अब अचानक क्या हुआ है कि विश्व बैंक और यूरोपीय आर्थिक समुदाय से लेकर भारतीय पूंजीपति वर्ग सभी को गरीब बच्चों को प्राथमिक (कक्षा 1-5) और उत्तर-प्राथमिक (कक्षा 6-8)

शिक्षा सुलभ करने का महत्व दिखने लगा है? इस सवाल का उत्तर वैश्वीकृत अर्थव्यवस्था में न्यूनतम शैक्षिक स्तर वाले श्रमिक वर्ग की भूमिका से जुड़ा हुआ है। अब इन सभी ताकतों को समझ में आ गया है कि यदि श्रमिक वर्ग को न्यूनतम स्कूली शिक्षा नहीं मिली तो सूचना प्रौद्योगिकी और अन्य नई तकनीक को फैलाने का काम रुक जाएगा और वैश्वीकरण और बाजारीकरण की रफ्तार धीमी पड़ जाएगी।" ऐसे में रपट की मूल्य आधारित शिक्षा, युवाओं के भौतिक सुखों के पीछे भागने की प्रवृत्ति और समाज के चारित्रिक विघटन पर जताई गई चिंता बेमानी है। अपसंस्कृति के वाहक भूमंडलीकरण का समर्थन करने वाले नेता और भारतीय संस्कृति के 'स्वयंसेवक' समवेत स्वर में अक्सर इस तरह की चिंता जताते रहते हैं।

रपट में एक जोरदार सिफारिश विश्वविद्यालयों से राजनैतिक गतिविधियां समाप्त करने की है। सिफारिश पठनीय है: "हमारे विश्वविद्यालय राजनीति के अखाड़े (हॉटबेड्स ऑफ पॉलिटिक्स) बन गए हैं। विश्वविद्यालयों में नेतागिरी करने वाले शिक्षक ही मुख्य रूप से उच्च शिक्षा में स्तर और प्रतिबद्धता की गिरावट के लिए जिम्मेदार हैं। विश्वविद्यालय यूनियनें राजनैतिक कैरियर बनाने की पौधशाला बनी हुई हैं। इस गंभीर मर्ज के इलाज के लिए जरूरी है कि सभी राजनैतिक पार्टियों के बीच यह समझदारी बने कि वे विश्वविद्यालयों और शैक्षणिक संस्थाओं से दूर रहेंगी। यह विचार एक यूटोपिया लग सकता है। लेकिन इस दिशा में कहीं पहले पहल हो जानी चाहिए थी। यह भी आवश्यक है कि विश्वविद्यालय परिसरों और शैक्षणिक संस्थाओं में किसी भी तरह की राजनैतिक गतिविधियों पर प्रतिबंध लगाने के लिए कानून बनाया जाए।" विश्वविद्यालयों से राजनीति की सफाई का सुझाव नया नहीं है। इस दिशा में प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष कोशिशें पहले भी हुई हैं और अभी की जा रही हैं। लेकिन रपट में जो निजी विश्वविद्यालय स्थापित करने की सिफारिश की गई है वह अगर लागू होती है तो यह 'मर्ज' अपने-आप ही हमेशा के लिए मिट जाएगा। सिफारिश इस प्रकार है: "भारत में विश्वविद्यालय शिक्षा-प्रणाली का बड़े पैमाने पर निजीकरण करने के लिए, उच्च शिक्षा के मामले में सरकार की भूमिका को फिर से परिभाषित करना होगा। विज्ञान और प्रौद्योगिकी, प्रबंधन, अर्थशास्त्र, वित्तीय प्रबंधन और वाणिज्यिक उपयोग के दूसरे महत्वपूर्ण विषयों के क्षेत्र में नए निजी विश्वविद्यालयों की स्थापना को प्रोत्साहित करने के लिए एक निजी विश्वविद्यालय अधिनियम बनाया जाना चाहिए। व्यापार और उद्योग घरानों को उच्च अध्ययन के विश्वस्तरीय संस्थान स्थापित करने में जानदार भूमिका बनती है। अग्रणी व्यापार घरानों को ऐसे संस्थान और विश्वविद्यालय स्थापित करने के लिए जरूरी तौर पर प्रोत्साहित किया जाना चाहिए।" जाहिर है, वैश्वीकृत बाजार व्यवस्था के साथ और उसके उन्नयन के लिए चलाए जाने वाले इन निजी विश्वविद्यालयों और संस्थानों में बाजारवाद की राजनीति के अलावा अन्य किसी प्रकार की राजनीति की कोई गुंजाइश नहीं होगी। मुक्त चिंतन की जो वकालत रपट में की गई है वह दरअसल मुक्त बाजार के एकमात्र चिंतन की वकालत है। यह रपट और इसमें की गई राजनीति के निषेध की खास सिफारिश उच्च पूंजीवादी- उपभोक्तावादी विचारधारा की राजनीति को मजबूती प्रदान करने की मुहिम का हिस्सा है। यह 'सिद्ध' करने के बाद कि पूंजी से जुड़ी शिक्षा ही 'सच्ची' शिक्षा है, रपट में इस शिक्षा को परवान चढ़ाने के लिए उच्च पूंजीवादी-उपभोक्तावादी देशों से नवीनतम पाठ्यक्रम, शिक्षक सहयोग, विशेषज्ञता, प्रत्यक्ष निवेश आदि की जमकर वकालत की गई है। लेकिन मनुष्य के दिमाग में सवाल उठाने वाले और उसकी ज्ञान व शोध की प्रतिभा को प्रेरित करने वाले विषयों की अहमियत और बेहतरी के लिए कोई सिफारिश रपट में ढूंढे नहीं मिलती। यहां यह भी कहना होगा कि सन् 2015 तक देश के 6 प्रतिशत छात्रों को मिलने वाली रपट में परिभाषित उच्च शिक्षा उनमें नई प्रौद्योगिकी के सृजन की योग्यता विकसित नहीं करेगी। जिस तरह प्राथमिक और माध्यमिक शिक्षा प्राप्त छात्र भारतीय बाजार के मजदूर होंगे, उसी तरह उच्च शिक्षा प्राप्त छात्र अमरीका और यूरोप के बाजार में मजदूर होंगे। गुलाम दिमाग नई प्रौद्योगिकी का सृजन नहीं कर सकता। बल्कि वह ज्ञान के किसी भी विषय में मौलिक सृजन की क्षमता खो बैठता है। वह केवल नकल का कौशल हासिल कर सकता है। अपने देश और समाज की परिस्थितियों और समस्याओं को पूरी तरह अनदेखा कर तैयार की गई यह रपट खुद अपने में नकल का एक नायाब नमूना है।

अंबानी-बिड़ला समिति की रपट न केवल जन-विरोधी है, वह जनतंत्र-विरोधी भी है। प्राथमिक स्कूल के एक सामान्य शिक्षक से लेकर विश्वविद्यालय के कुलपति तक, पूरे शिक्षा जगत को इसका जमकर विरोध करना चाहिए। शिक्षण संस्थाओं को राजनैतिक गालियां देने वाले पूंजीपतियों और उनकी सरकार को यह याद दिलाना जरूरी है कि देश की आजादी और उसके बाद होने वाले जनांदोलनों में शिक्षकों और छात्रों की महत्वपूर्ण रचनात्मक भूमिका रही है और आज भी है। अलबत्ता संघर्ष को मजबूत और दूरगामी बनाने के लिए शिक्षा जगत को इस पर गंभीरतापूर्वक विचार करना होगा कि बाजारवाद और भ्रष्ट राजनीति की हवा में उसकी अपनी पगड़ी भी ढीली हो गई है। अपनी पगड़ी सम्भाले बगैर उसे समाज के बाकी तबकों की सहानुभूति और समर्थन नहीं मिल सकता। शिक्षक और छात्र अपने अधिकारों के लिए निश्चित ही संघर्ष करें, राजनीति भी करें, क्योंकि जहां ज्ञान होगा वहां राजनीति होगी, लेकिन साथ ही उन्हें अपनी यह विशिष्टता बनाए रखनी होगी कि वे राष्ट्र और समाज के निर्माण के लिए प्रतिबद्ध और समर्पित नागरिक हैं और उन्हें अपनी इस भूमिका पर गर्व है। बाजार की इस आंधी का मुकाबला उन्हें ज्ञान की प्राणवायु से करना है।